जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ५९ अंक - ३
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

फाल्गुन-चैत्र : सम्वत् २०७२ वि० मार्च – २०१६

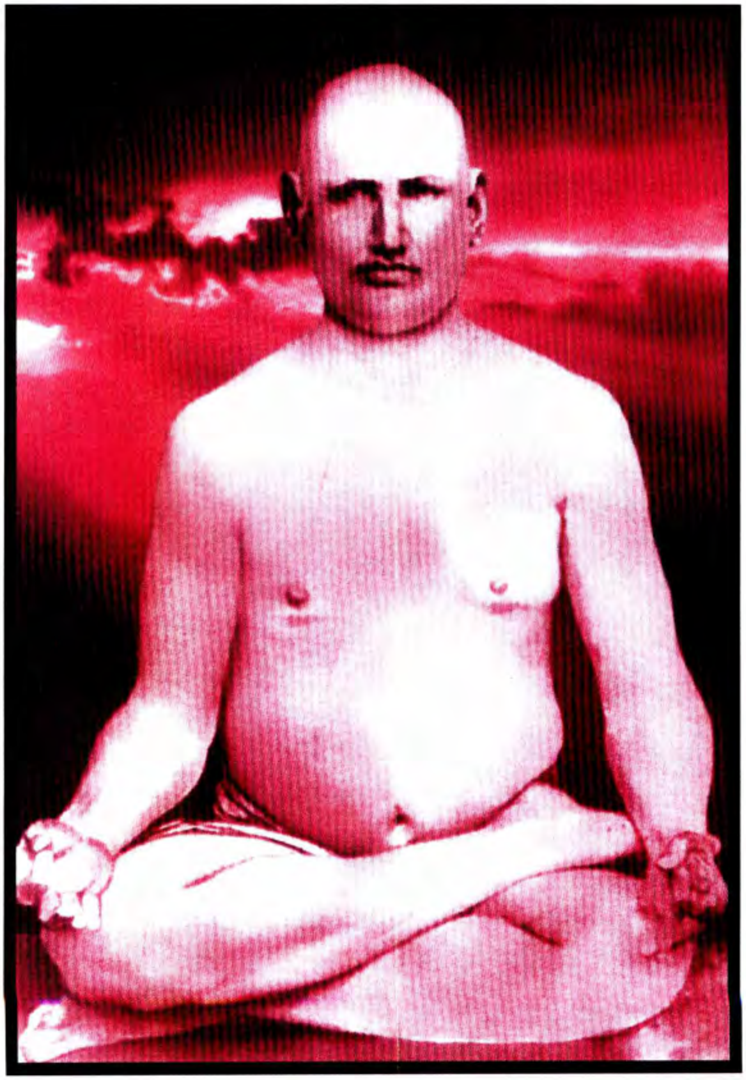

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

महर्षि महिमा पर्व

आर्य समाज कलकत्ता, आर्य समाज बड़ाबाजार, आर्य समाज हावड़ा एवं आर्य स्त्री समाज भवानीपुर के संयुक्त तत्वावधान में तथा आर्य समाज कलकत्ता के संयोजकत्व में महर्षि महिमा पर्व का आयोजन महर्षि जन्म दिवस से महर्षि बोधोत्सव (फाल्गुन कृष्ण दशमी से फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी) तदनुसार ४ मार्च से ७ मार्च २०१६ पर्यन्त आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में उत्साहपूर्वक मनाया गया ।

फाल्गुन कृष्ण दशमी, ४ मार्च २०१६ को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म दिवस सायं ६ बजे से ९ बजे तक मनाया गया । इस अवसर पर यज्ञ के उपरान्त श्री श्यामानन्द जी के भजन तथा पं० देवव्रत तिवारी, आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय (सुल्तानपुर) तथा स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन एवं उनके अवदानों पर प्रकाश डाला ।

५ मार्च एवं ६ मार्च को सायं ७ बजे से यज्ञ, भजन व प्रवचन का आयोजन हुआ । डॉ० शिवदत्त पाण्डेय जी ने महर्षि दयानन्द के बहुआयामी व्यक्तित्व तथा समाज एवं राष्ट्र के प्रति किये गये कार्यो का उल्लेख किया ।

ऋषि बोधोत्सव :- फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी सोमवार ७ मार्च २०१६ को सायं ४.३० बजे से स्थानीय हृषीकेश पार्क (आम्हर्स्ट स्ट्रीट) में ऋषि बोध पर्व मनाया गया । इस अवसर पर कलकत्ता एवं हावड़ा अञ्चल के लगभग ४० आर्य परिवारों ने अपने-अपने यज्ञ कुण्ड के साथ उपस्थित होकर बहुकुण्डीय पारिवारिक यज्ञ सम्पन्न किया । यज्ञ डॉ० शिवदत्त पाण्डेय, पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० कृष्णदेव मिश्र, पं० अर्चना शास्त्री, पं० योगेश राज उपाध्याय एवं पं० देवव्रत तिवारी जी द्वारा सम्पन्न कराया गया । तत्पश्चात् श्रीमती शम्पा जी, श्रीमती अर्चना शास्त्री, पं० श्यामानन्द जी द्वारा भजन तथा पं० देवव्रत तिवारी, पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० राहुल देव शास्त्री, श्री मनीराम आर्य, पं० वेदभानु जी तथा आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय जी ने महर्षि दयानन्द जी के अवदानों एवं उसके देश एवं समाज पर पड़े प्रभाव पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये । कार्यक्रम का कुशलतापूर्वक संचालन किया श्री योगेशराज उपाध्याय जी ने । कार्यक्रम के समापन पर प्रीतिभोज का भी आयोजन था ।

शोक समाचार

१. आर्य समाज कलकत्ता के पूर्व प्रधान श्री लक्ष्मण सिंह जी का आकस्मिक निधन सोमवार २५.०१.२०१६ को ९६ वर्ष की आयु में रात्रि ९ बजे उनके निवास स्थान पर हृदय गति रुक जाने से हो गया है ।

२. आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध संन्यासी तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान, महान गौभक्त, गुरुकुल कालवा के आचार्य वीतराग आचार्य बलदेव जी का निधन २८ जनवरी २०१६ बृहस्पतिवार को ८५ वर्ष की आयु में हृदयगति रुक जाने से हो गया है ।

३. आर्य समाज कलकत्ता के वरिष्ठ सदस्य श्री हरीराम जी आर्य का निधन २९ जनवरी २०१६ शुक्रवार को रात्रि १२.३० बजे ८२ वर्ष की आयु में हो गया है ।

आर्य समाज कलकत्ता के दिनांक ३१.०१.२०१६ के रविवारीय सत्संग पर एकत्रित समस्त आर्यजनों ने दिवंगत विभूतियों के प्रति हार्दिक सम्वेदना प्रकट की तथा परमपिता परमेश्वर से दिवंगत आत्मा की शान्ति एवं सद्गति तथा शोक संतप्त परिवार को वियोगजन्य दुःख को सहन करने की क्षमता प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ।

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५९ अंक — ३
फाल्गुन-चैत्र २०७२ वि०
दयानन्दाब्द १९२
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११६
मार्च — २०१६

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१. विजय के मूलमन्त्र (३८)	वेद-वीथिका से	४
२. महर्षि स्वामी दयानन्द जी का जीवन चरित्र	पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं कविराज रघुनंदन सिंह निर्मल द्वारा अनुवादित	७
३. क्रांतिकारी योद्धा संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती	श्री योगेश राज उपाध्याय	१०
४. ईश्वर, जीव और प्रकृति यही तीनों सृष्टि के मूलतत्व हैं	श्री हरिश्चन्द्र वर्मा वैदिक	१३
५. सरमा पणि संवाद-एक विवेचन	श्री उदयन आर्य	१७
६. अध्यापक सदाचारी और सत्यनिष्ठ हों	डॉ० अशोक आर्य	२०
७. बारूद के एक ढेर पर बैठी है यह दुनिया	पं० उम्मेद सिंह 'विशारद'	२३
८. श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य	परीक्षित मंडल 'प्रेमी'	२५
९. आर्य जगत के समाचार		२६

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ **email : aryasamajkolkata@gmail.com**

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

विजय के मूलमन्त्र

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहेमेधी च ।

क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ।। यजु० १७-८५

शब्दार्थ :-

स्वतवान्	=	आत्मबल से सम्पन्न, स्वत्ववान्
प्रघासी	=	प्रकृष्ट अन्नवाला (घस्लृ अदने)
सान्तपनः	=	सम्यक् तपस्वी, तेजस्वी
गृहमेधी	=	गृहमेध यज्ञ करने वाला
क्रीडी	=	क्रीड़ा करने वालों की तरह प्रसन्न चित्त
शाकी	=	शक्तिमान्, आत्म विश्वासी
उज्जेषी	=	उत्कृष्ट विजय वाला है ।

भावार्थ :- उत्कृष्ट विजय के मूल सूत्र हैं - (१) आत्मबल, (२) उत्कृष्ट भोजन (३) सम्यक् तपस्या (४) गृहमेध करना (५) प्रसन्न चित्त (६) शक्तिमान् होना ।

विचार विन्दु :

१. **षड् सूत्री प्रोग्राम और दैवी सम्पद् ।**
२. **अन्न का शरीर, मन, विचार आदि से संबंध**
३. **शरीर, मन, वाणी का तप ।**
४. **गृहमेध क्या है-गृह यज्ञ का प्रतिनिधि ।**
५. **दायित्व को प्रसन्न चित्त होकर पालन कर सकना का भाव ही तो विजय है ।**

व्याख्या

प्रस्तुत मंत्र में विजय के मूल मंत्र बताये गये हैं । कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में हारना नहीं चाहता, असफल नहीं होना चाहता । सबको जीवन में सफलता चाहिए । संसार के इस जीवन युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहिए । प्रस्तुत मंत्र में विजय के छः सूत्र बताये गये हैं । (१) उत्कृष्ट आत्मबल (२) उत्कृष्ट सात्विक भोजन (३) जीवन में विलासिता नहीं, तपस्या (४) गृहमेध-यज्ञ (५) मन में सात्विक-विचार प्रसन्नता और (६) शक्तिमान होना । एक-एक सूत्र पर थोड़ा-थोड़ा विचार करते हैं -

(१) आत्मबल - स्वत्व या आत्मबल का ही अर्थ है - आत्मविश्वास । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं

कि जिसमें आत्मबल है उसका आत्मा, उसका बन्धु, हितकारी सहायक हैं और जिसे अपने आत्मबल पर भरोसा नहीं हैं, जिसे स्वावलम्बन का सहारा नहीं है उसका आत्मा अपना ही शत्रु हैं । अतः स्वावलम्बन सबसे बड़ा धन है । एक ऐतिहासिक घटना है :

रामसिंह नाम का एक बड़ा बहादुर राजा हुआ था । उसका बाप युद्ध में मारा गया । माता ने बच्चे में अच्छे संस्कार डाले उसे स्वावलम्बी बनाया, आत्मबल से सम्पन्न किया । रामसिंह बहादुर तो था ही, बड़ा मातृ-भक्त भी था । उसने बहुत सारे राज्यों को जीत लिया । जीतता-जीतता राजस्थान से चलकर वह सिन्ध प्रान्त के पास सिन्धु नदी के किनारे पहुंच गया । उसके मन में आया कि सिन्धु नदी को पार करके सिन्धु के पार यवन देशों पर भी विजय प्राप्त करनी चाहिए। उस समय सिन्धु नदी में बाढ़ आई हुई थी। नदी सचमुच समुद्र की तरह उमड़ी हुई लहरा रही थी । सेनापतियों का साहस छूट गया । उन्होंने कहा—इस समय सिन्धु नदी को पार करना बुद्धिमानी नहीं हैं । सेना पार न हो पायेगी, घोड़े नदी में बह जायेंगे, हाथी डूब मरेंगे, हम बिना लड़े ही पराजित हो जायेंगे । रामसिंह ने कहा कि सेना को यहीं सिन्धु नदी के किनारे छावनी डालने का आदेश दो । मैं मां को पूछूंगा, वह जैसा कहेंगी हम वैसा ही कर लेंगे । सिन्धु का नाम अटक नदी भी हैं और अटक माने बाधा भी होता है । रामसिंह ने हरकारा मां के पास भेज दिया। मां ने उसे दो पंक्तियों का उत्तर दिया —

'सबय भूमि गोपाल की, तामै अटक कहां ।
जाकै मन में अटक है, सोयी अटक रहा ।।'

रामसिंह को आत्मबल का बोध हो गया और उसने सेनापतियों से कहा—मैं अकेला नदी पार कर रहा हूं । जिनका मन हो हमारे साथ आवें, नहीं तो घर लौट जावें । देखते-देखते रामसिंह का घोड़ा तीर की तरह नदी को चीरता पार हो गया । और पीछे-पीछे सारी सेना, हाथी, घोड़े सब पार हो गये । यह है आत्मबल का करामात ।

(२) दूसरा सूत्र है - उत्कृष्ट भोजन । जिसका भोजन सात्विक नहीं होगा उसका जीवन भी सात्विक नहीं होगा, शरीर भी न स्वस्थ होगा न बलवान् होगा । आहार केवल अन्न का ही नहीं होता, मन और बुद्धि का भी होता हैं । ऐसे ग्रन्थों का पढ़ना और स्वाध्याय करना जो विचारों में उत्कृष्टता दें । भोजन शरीर, मन और आत्मा, सबको बलवान बनाने वाला हो ।

(३) तपस्या - तप आराम का उल्टा है । तपस्वी आराम-तलब नहीं होता । संसार में परिश्रम, चेष्टा से बढ़कर और कोई साधक नहीं हैं । एक प्रसिद्ध पंक्ति है -

'जो धरती की धूल चाट कर बड़े हुए हैं
संघर्षो से लड़े और फिर खड़े हुए हैं
वह जन - मारे नहीं मरेगा ।'

तपस्वी के जीवन में एक आकर्षण होता है । यह व्यक्तित्व का चुम्बक लोगों को अपनी ओर

खींचता है और तपस्वी की लोकप्रियता, जनप्रियता बढ़ जाती है। जिसे जनता प्यार करती है, वह सदा जीवन में विजयी बना रहता है।

(४) गृहमेध-यज्ञ - इसका अर्थ हैं -अपने घर-परिवार को यज्ञ-भाव से पाले, उनका निर्माण करें। व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन में स्वार्थ नहीं बल्कि परमार्थ एवं विश्वहित की भावना होनी चाहिए। सन्तान का निर्माण भी गृहमेध-यज्ञ है। उसे भी संसार के कल्याण के लिए अर्पित करने की भावना रखनी चाहिए।

(५) मंत्र में क्रीडी शब्द आया हैं। जैसे - खेलने के समय खिलाड़ी प्रसन्न रहते हैं, वैसे ही हर समय प्रसन्नचित्त और उत्साह से भरा हुआ होना चाहिए। जो उत्साह से भरा रहता हैं, प्रसन्न रहता हैं उस का व्यक्तित्व आकर्षक होता है और वह जीवन में सदा सफल रहता है।

(६) विजय का अंतिम सूत्र है — शक्तिमान होना। (१) शारीरिक शक्ति (२) बौद्धिक और मानसिक शक्ति (३) आर्थिक और (४) सामाजिक शक्ति।

शक्ति के प्रत्येक चरण में नियम का पालन, अभ्यास, सदाचार और सद्विचार मुख्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं। इनके बिना आर्थिक और सामाजिक उन्नति भी नहीं हो पातीं और जब मनुष्य के जीवन में यह शक्ति आ जाती हैं तो उसका शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और धार्मिक ओज-तेज बढ़ जाता है कहा गया है -

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहित:'

जिसके हाथ में क्रियाशीलता हैं, विजय उसकी हथेली पर धरी है।

साभार : **वेद-वीथिका**

(पृष्ठ ९ का शेषांश)

स्थान विदित होता है। कस्बा टंकारा से किसी ऐसे खोये हुए व्यक्ति की सूचना नहीं मिली जिस पर स्वामी जी का संदेह किया जा सके और न जड़ेश्वर का मन्दिर वहाँ से इतना समीप है कि एक लड़का दो बजे रात के वहां से घर को सोने के लिए चला आये और न ब्राह्मणों के पठन पाठन का वहाँ कोई प्रबन्ध है। हाँ ये, सारी बातें मोरवी में पाई जाती हैं।

रियासत मोरवी के महाराजा साहब से जब मैंने पंडित काशीराम सेवकराम औदीच्य एम॰एम॰ हेडमास्टर हाईस्कूल मोरवी के द्वारा पूछा तो उन्होंने कहा कि जब स्वामी जी राजकोट में पधारे थे, उन दिनों हम वहां के राजकुमार कालिज में पढ़ते थे और वहाँ पर वे हमारे कालिज में भी प्रिन्सिपल साहब से मिलने के लिए आये थे। हमने उनके दर्शन किये हैं और पूछने से विदित हुआ कि वह रियासत मोरवी के रहने वाले थे।

''मोरवी गजट'' में विज्ञापन भी दिया गया। ''उदीच्य-पत्रिका'' अहमदाबाद में भी नोटिस दे दिया गया परन्तु इससे अधिक पता न मिला। इसी कारण वश इसी पर सन्तोष करके समस्त वृत्तान्त बिना किसी प्रकार की काटछांट के पाठकों की भेंट करता हूँ। (क्रमशः...)

महर्षि स्वामी दयानन्द जी का जीवन-चरित्र

प्रथम भाग

अध्याय- १

घटनाओं की खोज में लेखक का प्रयत्न : प्राक्कथन

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में संवत १८८१ में हुआ था । पूरे भारत वर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी श्रृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

नाम और जन्म स्थान न बताने के कारण – स्वामी जी ने अपना और अपने पिता का नाम किसी को नहीं बतलाया, इसके कई कारण हैं ।

(१) पूर्ण वैराग्य से जब सांसारिक धन्धों को त्याग कर मनुष्य ईश्वरपरायण हुआ तो फिर सम्बन्धियों के नाम बतलाना अपने आपको सांसारिक बन्धनों में फँसना है जो संन्यासी के लिए कदापि उपयुक्त नहीं ।

(२) महात्मा संन्यासी लोग इस बात को आश्रम बदल जाने की दृष्टि से अच्छा नहीं समझते क्योंकि इससे स्पष्टतया परमात्मा की भक्ति और योगाभ्यास आदि साधनों में विघ्न पड़ जाने की आशंका है। जिन साधुओं ने ऐसा किया उन्हें गृहस्थ सम्बन्धों में फँसना पड़ा । इसके हजारों उदाहरण विद्यमान हैं। जैसे लेखक श्री आत्मप्रकाश यति के विषय में उनके विद्वान् टीकाकार ने यह लिखा है — **यतयः स्वकीयनिबन्धेषु स्वदेशकालादिकं प्रायो नैव निरूपितवन्तः इति भगवतः श्री प्रकाशात्मयतेः स्वदेशका लौ सम्यङ् न ज्ञायेते तथाप्यनुमीयते यद्विद्यारण्यसमयात्पूर्व तस्य स्थितिरासीदिति ।**

अर्थ — संन्यासी लोग अपनी पुस्तकों में अपने देश और जन्म समय को प्रायः प्रकट नहीं करते है, इसलिए महात्मा प्रकाशात्म यति का देशकाल पता नहीं लगता परन्तु फिर भी विदित होता है कि वे विद्यारण्य स्वामी से पहले हुए थे ।

(३) जिन-जिन धार्मिक शिक्षकों ने अपने सम्बन्धियों के नाम बतलाये या उनसे प्रकट सम्बन्ध न रखते हुए भी सम्बन्ध रखा, उन द्वारा प्रचारित धर्म में मनुष्य पूजा अथवा समाधि पूजा की साझेदारी पर आधारित प्रथाएँ प्रचलित हो गई जिनसे उनका छूटना नितान्त कठिन है । स्वामी जी ने इन सब भ्रमों और नास्तिकतापूर्ण दृश्यों को आँखों से देखा और बहुत से धार्मिक नेताओं का जीवनचरित्र पढ़कर और अपने अनुभव से पूर्ण सोच विचार करके यही उचित समझा कि मनुष्य पूजा तथा समाधिपूजा और

स्थानपूजा और स्थान पूजा की घृणापूर्ण शिक्षा और उसकी सभ्यतादूषक प्रथा को वैदिक धर्म के अनुयायियों से सर्वथा पृथक् रखा जाये । इसलिए उन्होंने अपना और अपने माता-पिता का नाम प्रकट करना उचित न समझा ।

उनके कार्यों के प्रति जनता का आकर्षण और जीवनवृत्त जानने की जिज्ञासा – मार्च, सन् १८६० में उनका होनहार स्वभाव अपने चमत्कार दिखाने लगा और उसी समय से शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान उनके कार्यों की ओर आकृष्ट हुआ । अप्रैल, सन् १८६७ से वे पाखण्डखंडन और सत्य धर्म के मंडन में पूर्णतया संलग्न हो गये । नवम्बर, १८६९ में जबकि उन्होंने बनारस में एक महान् विजय प्राप्त की उनकी ख्याति और भी अधिक होने लगी । सन् १८७१ में जब वे कलकत्ता में पधारे और संस्कृत भाषा में धर्मप्रचार आरम्भ किया तो यहाँ के कतिपय सम्मानित सज्जनों ने भी उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी वृत्तांत जानने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे । विद्वान् संन्यासियों के अतिरिक्त (जिन्हें वे कुछ वृत्तांत कभी मित्रता के नाते बता दिया करते थे), साधारण गृहस्थियों के सामने ऐसे वृत्तान्त बताना निरर्थक समझते रहे ।

स्वकथित तथा स्वलिखित आत्मवृत्तांतों की कहानी— स्वामी जी ने जब सन् १८७५ में पूना और बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की तो वहाँ के कई विद्वान् सज्जनों ने उनका वृत्तांत जानने का यत्न किया और चूँकि उन दिनों वे भाषा बोलने लगे थे और व्याख्यान भी दिया करते थे, लोगों के बार-बार अनुरोध पर एक दिन उन्होंने अपने जीवन-चरित्र पर ४ अगस्त, सन् १८७५ को व्याख्यान दिया और वह उसी वर्ष मराठी भाषा में प्रकाशित हो गया । हमने उसका भाष्य मराठी से हिन्दी में पंडित गणेश रामचन्द्र और महाशय श्रीनिवास राव जी से कराया ।

फिर अप्रैल, सन् १८७९ में जब कर्नल अल्काट साहब स्वामी जी से मिले तो उनके अनुरोध करने पर स्वामी जी ने अपना जीवन-चरित्र लिखने की प्रतिज्ञा की और तदनुसार हिन्दी में लिखकर समय-समय पर भेजते रहे जो थियासोफिस्ट नवम्बर व दिसम्बर, १८८० के अंकों में प्रकाशित होता रहा। जो हिन्दी लिखकर स्वामी जी ने भेजी उसकी एक प्रति ला० मथुराप्रसाद मन्त्री आर्यसमाज अजमेर और दूसरी पंडित छगनलाल श्रीमाली भूतपूर्व कामदार रियासत मसूदा किशनगढ़ निवासी के पास से प्राप्त हुई ।

भारतसुदशाप्रवर्तक पत्रिका फर्रूखाबाद, आर्य समाचार मेरठ, दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग, कुछ दिनचर्या, आर्य अखबार बम्बई, ला० दलपत राय एम०ए० द्वारा लिखित उर्दू जीवन-चरित्र रीजनेरेटर आफ दी आर्यावर्त और पताका अखबार कलकत्ता—इन सभी ने थियासोफिस्ट की नकल की। ४ अगस्त, सन् १८७५ को व्याख्यान को किसी ने हाथ भी न लगाया और न उन्हें उसका ज्ञान हुआ ।

इस आत्मवृत्तान्त के सम्पादन की हमारी शैली – चूँकि मूल प्रतियाँ केवल तीन हैं अर्थात् पूना का व्याख्यान और थियोसोफिस्ट पत्रिका तथा हिन्दी कापी हमने तीनों को बड़ी सावधानता के साथ नियमित

रूप दिया । इसमें एक-एक शब्द स्वामी जी का है परन्तु नियमित रूप हमारा दिया हुआ है । हमने नियमित रूप देने के अतिरिक्त और कोई अधिकता नहीं की ।

स्वामी जी के जीवन-चरित्र सम्बन्धी वृत्तान्त जानने के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कथनानुसार ३ दिसम्बर १८८८ से सन् १८९२ तक इस संवाददाता ने निरन्तर खोज की और १८९६ के अन्त तक समय-समय पर भिन्न-भिन्न नगरों में जाकर लोगों से वृत्तान्तों को जाना ।

कुल, नाम व जन्मस्थान के विषय में अनेक साक्षी — काठियावाड़ में जो स्वामी जी की जन्मभूमि है, डेढ़ मास के लगभग फिरता रहा और राज्य की सहायता से उस प्रदेश के सारे ग्राम एक-एक करके छान डाले ।

पिछले वर्ष दीवाली के अवसर पर अमृतसर में एक महात्मा साधु (जिनकी आकृति स्वामी जी से मिलती थी और जिनके विषय में लोगों में प्रसिद्ध था कि वह स्वामी दयानन्द जी का भाई है, जिनका नाम गोविन्दानन्द सरस्वती है और जो छः वर्ष तक स्वामी जी के साथ गंगातट पर विचरते रहे) से भेंट हुई । उन्होंने कहा कि स्वामी जी के पिता का नाम अम्बाशंकर औदीच्य ब्राह्मण था । पंडित ज्वालादत्त कान्यकुब्ज और मिस्टर रामदास छबीलदास बैरिस्टर ऐट-ला बम्बई और कई अन्य सज्जनों जैसे कि ठाकुर मुकन्द सिंह साहब रईस, छलेसर के द्वारा विदित हुआ कि स्वामी जी का जन्म नाम मूलशंकर था । १८७६ के अन्त में देहली में जो शाही दरबार हुआ था उसमें काठियावाड़ के कुछ रईस भी पधारे थे, उन्होंने स्वामी जी को मूलशंकर नाम से पुकारा था जिन्हें स्वामी जी ने अलग ले जाकर ऐसा करने से रोक दिया था ।

मोरवी के वर्तमान महाराजा साहब के विचार नास्तिकों के से हैं । उन्होंने विलायत से लौटने के पश्चात् समस्त ब्राह्मणों को धर्मार्थ जागीरें बन्द कर दीं और कुछ सचिवों के जैनी होने का भी कारण है । इसलिए अब उस राज्य में औदीच्य ब्राह्मणों की जमींदारी बिल्कुल नहीं रही और प्रायः ब्राह्मण लोग वहाँ २०-२५ वर्ष से भीख अधिक माँगने लग गये हैं ।

स्वामी का जन्म स्थान टंकारा नहीं, मोरवी था – महाशय काहन जी कोबीर जी, जो वर्ष १८९२ ईसवी में रियासत मोरवी की ओर से टंकारा में कामदार थे, वर्णन करते थे कि समीपस्थ सम्बन्धियों में उनका एक चाचा, जिसका नाम मूलशंकर था, लगभग संवत् १९०० वि० में घर से भाग गया था परन्तु उसका अथवा उसके चित्र का पहचानने वाला अब कोई जीवित नहीं है । मैंने जब स्वामी जी का प्रारम्भिक वृत्तान्त उनको सुनाया तो वे प्रायः उसका समर्थन करते थे । पुराणों के इस कथन के अनुसार कि विप्राणां देवता शंभुः समस्त काठियावाड़ के ब्राह्मण शिव जी के भक्त हैं और इस रियासत में शिव जी के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं और दोनों का नाम जड़ेश्वर महादेव है । एक तो टंकारा से दो कोस की दूरी पर और दूसरा मोरवी नगर से कुछ कम आधा मील है । चूँकि काहन जी भी मोरवी के रहने वाले हैं और वहां जड़ेश्वर का मन्दिर भी है जिसमें शिवरात्रि की रात को प्रायः ब्राह्मण एकत्रित होते हैं । स्वामी जी के पूना वाले व्याख्यान से तथा संवाददाता की खोज से तो खास मोरवी नगर उनका जन्म

(शेष पृष्ठ ६ पर)

क्रांतिकारी योद्धा संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती

- योगेश राज उपाध्याय

स्वामी दयानन्द का जन्म फाल्गुनी कृष्णा दशमी सन् १८८१ वि०, सन् १८२५ ई० को सौराष्ट्र (गुजरात) के टंकारा में हुआ था । इनके पिताजी कर्षणजी तिवारी संपन्न औदीच्य सामवेदी ब्राह्मण थे और निष्ठावान शिव भक्त थे और उन्होंने अपने इस पुत्र का नाम मूलशंकर रखा । सामवेदी ब्राह्मण होने पर भी पिताजी ने मूलशंकर को यजुर्वेद की रुद्राध्यायी बचपन में ही कंठस्थ करा दी । कर्षण जी पुत्र मूलशंकर को भगवान् शिव की कहानियां बड़ी निष्ठा से सुनाया करते थे । पिता के आग्रह पर बालक मूलशंकर ने चौदह वर्ष की आयु में ही पूर्ण श्रद्धा निष्ठा से शिवरात्रि का व्रत किया । दिन भर भगवान् शिव की कथा वार्ता चर्चा होती रही । सायंकाल पिताजी मूलशंकर को साथ ले, गाँव के बाहर मंदिर में शिवरात्रि का पूजन करने के लिए गये । शिवरात्रि जागरण का विशेष फलदायक महत्व कहा जाता है । प्रथम और द्वितीय प्रहर का पूजन बड़े उत्साह और ठाट-बाट से हुआ पर तीसरे प्रहर में निद्रा देवी ने सबको दबा लिया । मूलशंकर के पिताजी, मंदिर के पुजारी, सभी सो गए, सिर्फ चौदह वर्ष का बालक मूलशंकर पूरी श्रद्धा भक्ति से जागते रहा । इतने में मंदिर के इधर-उधर से दो-चार चूहे शिव-पिंडी पर अर्पित सामग्री को खाने के लिए पिण्डी पर उछल कूद करने लगे । मूलशंकर के हृदय में प्रभु-कृपा से सत्य का प्रकाश हुआ । उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि यह पिण्डी कल्याणकारी भगवान् शिव, कैलाशवासी, तांडवकारी भगवान् शंकर नहीं हो सकती । यह सत्य के प्रति प्रथम आग्रह था । उन्होंने पिताजी को जगाया किंतु पिताजी और पुजारी मूलशंकर को संतुष्ट नहीं कर सके और सत्य के प्रति आग्रही मूलशंकर घर आ गये । सत्य के प्रति यह चरम आग्रह स्वामी दयानन्द से संपूर्ण जीवन में बड़ी दृढ़ता से बना रहा और स्वामी दयानन्द ने यावत् जीवन सत्य का ही प्रचार किया और किन्हीं भी परिस्थितियों में सत्य से कोई समझौता नहीं किया । स्वामी दयानन्द ने अपने युगांतरकारी कालजयी ग्रंथ **सत्यार्थ प्रकाश** की भूमिका में लिखा है — "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननहारा है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य पर झुका जाता है ।" स्वामी जी वहीं भूमिका में फिर लिखते हैं — "विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर देना, पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें ।" वहीं पुनः लिखते हैं — "यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़कर सर्वतंत्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल, सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें वर्तावें तो जगत का पूर्ण हित होवे । क्योंकि विद्वानों के विरोध से, अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विधि दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है ।" यह उद्धरण किसी समीक्षा या व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखते । ऋषि दयानन्द सत्य के प्रति इतने आग्रही थे कि उन्होंने आर्य समाज का चौथा नियम यह बनाया सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

स्वामी जी ने पुनः पांचवें नियम में यह व्यवस्था दी कि "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।"

सत्य और न्याय एक दूसरे के साथी हैं। जहाँ सत्य का पालन होगा वहां न्याय स्वतः होता रहेगा। स्वामी जी के युग में कई प्रकार के अन्याय समाज में, परिवारों में प्रचलित हो गए थे। सामाजिक रूप में छुआ-छूत भयानक रूप ले चुका था। अछूतों को हेय-दृष्टि से देखा जाता था। परिवारों में स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। स्त्रियां सब प्रकार से तिरस्कृत और पैर की जूती समझी जातीं थीं। स्त्रियों और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। स्वामी दयानन्द ने बड़े क्षोभ और उग्रता से इस अन्याय का विरोध किया। लड़कियों के लिए पाठशाला की व्यवस्था की और अछूतों के लिए छुआछुत के भेद भाव दूर कर दिए और उनके लिए भी पढ़ने की व्यवस्था की। उस युग में बाल-विवाह बहुत प्रचलित था फलतः विधवाओं की संख्या भी बहुत अधिक थी किन्तु विधवा-विवाह धर्म विरुद्ध माना जाता था। ये बाल विधवाएँ या तो वेश्या बन जाती थीं या देवदासियाँ। स्वामी दयानन्द ने इन सभी अन्यायों का मुखर विरोध किया। आर्य समाज ने अपने मंदिरों से छुआछूत को हटाया और बाल विवाह के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन किया। हिन्दू समाज में विधवा विवाह आरम्भ हो गये। आर्य समाज मन्दिरों में कन्याओं को पढ़ाने के लिए पाठशालाएँ खुल गयीं। अछूतों को आर्य समाज के विद्यालयों और छात्रावासों में बिना किसी रोट-टोक के प्रवेश मिलने लगा। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को सामाजिक बहिष्कार का दंड भी भोगना पड़ा, किन्तु स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं के फलस्वरूप ये सामाजिक आंदोलन बढ़ता ही गया और छुआछूत मिटने लगा तथा स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह सामाजिक अधिकार मिलने लगे। उन्हें सब प्रकार से उन्नति का अवसर सुलभ हो गया।

स्वामी दयानन्द के इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि अछूत कुलों के विद्यार्थी भी बड़े-बड़े विद्वान्, आचार्य, वेदपाठी, अध्यापक बनने लगे और बिना किसी भेद-भाव के पंडितों की मंडली में प्रतिष्ठित होने लगे। स्त्रियां भी संस्कृत और वेद की उच्चकोटि की विदुषी बनने लगीं। इधर छुआछूत को दूर करने का प्रयास महात्मा गांधी ने भी किया और समाज से छुआछूत की प्रथा समाप्त होने लगी।

स्वामी दयानन्द का सुविचारित निश्चय था कि जब तक भारतवर्ष ने वेदों की शिक्षा को अपने राष्ट्रीय जीवन में अपना रखा था, तब तक देश की सर्वांगीण उन्नति हुई और देश संसार के सभी देशों का शिरोमणि बना रहा। वेदों को अपनाने के अनेक कारण थे। वेद पुरुषार्थ और कर्मण्यता का उपदेश देते हैं — कुरुवन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत्। वेद कर्म न करने वालों को, कामचोर, दस्यु कहता है, ऐसे परजीवियों को दंड देने का आदेश देता है — "अकर्मा दस्युः बधीः दस्युं।" वेदों में पाप-क्षमा का सिद्धान्त नहीं है, कर्मों का फल भोगना पड़ता है — "अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभं।" वेद में स्वराज्य की बड़ी महिमा है। अनेक मंत्रों में "अर्चननु स्वराज्यम" का संपुट हुआ है, प्रखर राष्ट्रवाद की महिमा का वर्णन है। प्रार्थना है कि हमारे राष्ट्र में सब प्रकार के विद्वान्, योद्धा, विदुषी स्त्रियां और बलवान गाय, घोड़े, पशु आदि हों। वेद में मातृभूमि की

बड़ी उत्कृष्ट भावना विद्यमान है । अथर्ववेद में भूमि सूक्त में कहा गया है — ''माता भूमिः, पुत्रोहम् पृथिव्याः।'' मातृभूमि की यह प्राचीनतम प्रतिष्ठा है । वेद में विश्व सरकार और विश्व नागरिक का भी वर्णन है । वेद में विश्व नागरिक को ''विश्व मानुष'' कहा गया है । यह संयुक्त राष्ट्रसंघ से भी ऊँची, अधिक उत्कृष्ट व्यवस्था वेदों में पायी जाती है । अंग्रेजों की कूटनीति से संस्कृत और हिन्दी मातृभाषाओं की शिक्षा की बड़ी उपेक्षा हो रही थी । सम्पन्न लोग उर्दू और फारसी पढ़ रहे थे । स्वामी दयानन्द ने इस षड़यंत्र के मूल को पहचाना और राष्ट्र में एकता की भावना को सुदृढ़ करने के लए हिन्दी का पुरजोर समर्थन किया । उन्होंने आर्य समाज में अपने संगठन में सारे कामों को हिन्दी में करने का अनिवार्य नियम बना दिया । स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए भी सत्य, न्याय और वेद का प्रचार किया ।

कुरीतियों का प्रबल विरोध किया और शोषितों का मुखर पक्ष लिया । समाज सुधार के आन्दोलन उन्नीसवीं सदी में अनेक चले किंतु ज्यादातर आंदोलन क्षेत्रीय सीमित प्रभाव ही डाल सके । जो अखिल भारतीय प्रभाव स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने डाला वह उस समय और किसी सुधार आन्दोलन से संभव नहीं हुआ । इतने सारे मोर्चो पर युगांतरकारी चिंतन देने के कारण ही राष्ट्रकवि दिनकर ने ऋषि दयानन्द को ''रणारूढ़ योद्धा संन्यासी'' कहा है । आज शिवरात्रि को बोध रात्रि के रूप में मनाते हुए कृतज्ञ राष्ट्र इस योद्धा संन्यासी का स्मरण कर रहा है ।

—०—

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

अधिक जान पड़ता है कि किसी समय तो ऐसा विचार हो जाता है कि यह तत्वज्ञान किसी और ही युग में लिखा गया होना चाहिए । मैं नित्य प्रात:काल अपने हृदय और बुद्धि को गीता रूपी पवित्र जल में अवगाहन कराता हूँ ।'' पुनः गीता की प्रशंसा करते हुए पाश्चात्य दार्शनिक श्रीऑगस्ट बिल्हेल्म फान श्लीगल ने लिखा है — **''संसार में जितने भी ग्रन्थ हैं, उनमें भगवद्गीता – जैसे सूक्ष्म और उन्नत विचार कहीं नहीं मिलते । जिस समय मैंने इसको पढ़ा, उस समय मैं विधाता का सदा के लिए ऋणी बन गया कि उन्होंने मुझको इस ग्रन्थ का परिचय प्राप्त करने के लिए जीवित रक्खा ।''**

गीता देश और काल के बंधन से मुक्त सार्वकालिक और सार्वदेशिक ग्रन्थ है । यह एक ऐसा आत्मीयता संबंधित सरोवर है, जिसके पावन तट पर सामाजिक जीवन सौरभ और सुषमा से ही सुरभित नहीं होता, वरन् अपनी युग-युगान्तर की प्यास भी मिटाता है तथा अपनी चंचल चित्त-वृत्तियों को प्रशान्त बनाने का भी अवसर पाता है । यह महान ग्रन्थ पिछले पाँच सहस्त्र वर्षों से मनुष्य की चित्त में परमोदात्त मानवीय मूल्यों और नैतिक आदर्शों को प्रतिष्ठित करता रहा है । इसमें सामन्तवाद, रूढ़ीवाद, कट्टरतावाद, संप्रदायवाद, वितण्डावाद, जातिवाद, उग्रवाद, अलगाववाद, उपनिवेशवाद का खौफनाक उन्माद नहीं है । इसमें एकात्म मानववाद, समरसता आधारित विश्व बन्धुत्व की भावना और सामासिक सर्वव्यापी सांस्कृतिक चेतना को महत्व देने वाले लोक कल्याणकारी समन्वयवादी भावधारा को विराट फलक पर उद्भासित किया गया है ।

वेद सदन, अमरपुर, पो०-पथरा
मो० ९१६२२०८००५ जिला-गोड्डा-८१४१३३ (झारखंड)

''ईश्वर, जीव और प्रकृति यही तीनों सृष्टि के मूलतत्व हैं''

- श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

यह वेदानुसार ऋषिदयानन्द की खोज है जो बिल्कुल सत्य है। भावेश मेरजा के शब्दों में ''ईश्वर समस्त जड़ पदार्थों तथा चेतन जीवात्माओं में अखण्ड एक रस व्यापक है अतः वह मूर्ति पदार्थों में भी व्यापक है।''

संसार में दो चेतन पदार्थ हैं — ''ईश्वर और जीवात्मा और एक जड़पदार्थ है मूल प्रकृति अथवा उससे बना हुआ सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत।''

प्रश्न यह था कि — ईश्वर तो जड़ पदार्थ में भी व्यापक है तो इससे वह पदार्थ चेतन क्यों नहीं हो जाता ? यह एक विचारणीय विषय प्रस्तुत किया गया है।

पहली बात तो यह है कि परमात्मा कैसा है, को कोई देख नहीं सका। परन्तु ज्ञानी लोग उसको होने का ज्ञान इस आधार पर करते हैं, जैसे पढ़ते हुए विद्यार्थी को देखकर विद्या का ज्ञान होता है। जैसे पुत्र को देखकर उसके जन्मदाता पिता का ज्ञान होता है। जैसे किसी सुन्दर आभूषण को देखकर उसको बनाने वाले शिल्पी का ज्ञान होता है। जैसे किसी कारखाना में मानव उपयोग के लिये बन रहे मशीनों को देखकर उसे बनाने वाले वैज्ञानिक का ज्ञान होता है। उसी प्रकार मानव शरीर की विज्ञान संगत रचनाओं तथा जीवन उपयोगी भिन्न-भिन्न पंचतत्वों एवं सूर्य चन्द्रादि की विधिपूर्वक सृष्टियों को देखकर सृष्टिकर्ता परमेश्वर का ज्ञान स्वाभाविक रूप में हो जाता है। वह हमें भले ही न दिखता हो पर उसका होना सत्य है, क्योंकि जो अतिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और जिसमें सर्वज्ञता का गुण है वही एकमात्र सोच समझ कर सर्वश्रेष्ठ मानव तथा अन्य सब प्राणी उत्पन्न हो सकने के लिये पहले उपयोगी पंचसूक्ष्म भूतों से, पंचतत्वों एवं सूर्य चन्द्रादि को विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के समूहों से निर्माण कर दिया, उसके पश्चात सागर नद-नदियाँ, पहाड़-पर्वत और वनस्पतियों की उत्पत्ति की। वनस्पतियों की उत्पत्ति पहले क्यों की, क्योंकि वह जानता था कि प्राणियों की उत्पत्ति के पहले इन सबकी आवश्यकता पड़ेगी। उदाहरण के लिये जैसे शिशु जन्म के पहले ईश्वरीयनियम से माता के स्तन में दूध की व्यवस्था पहले ही हो जाती है वैसे ही प्राणियों के उत्पन्न के पहले, शुद्ध आक्सीजन एवं फलादि के लिये वृक्ष वनस्पतियाँ पहले उत्पन्न हुई।

यदि जड़ प्रकृति के कणों में ईश्वर चैतन्यता और सर्वज्ञता का गुण दे देता, तो प्रकाश कणों के चुम्बकीय तरंग, शब्दादि को वाहन करने का गुलाम न बनता। आप जड़ पदार्थों से बातें भी कर सकते थे यह संभव नहीं है क्योंकि यह सृष्टिक्रम के विरुद्ध है।

प्रश्न था कि यदि ईश्वर व्यापक है तो जड़ पदार्थ अथवा मूर्ति चेतन क्यों नहीं ?

उत्तर — हमारे विचार से : १. अग्नि में जलाने का गुण है और वह सब जगत व्याप्तमान है पर सभी उसके गुणों से जलने नहीं लगते।

२. सूर्य का प्रकाश सभी पदार्थों पर पड़ रहा है, पर वे सब पदार्थ सूर्य जैसे प्रकाशवान नहीं बन सकते ।

३. अग्नि का गुण, पृथिवी, जल, वायु अन्तरिक्ष सभी में व्याप्त है, पर वे चारों अग्नितत्व नहीं बन सकते ।

४. इस शरीर में आत्मा के द्वारा प्राण क्रियाशील है, पर प्राण आत्मा के ज्ञातत्व गुणों को नहीं अपना सकता, क्योंकि प्राण चेतन से स्थूल है । इसी प्रकार ईश्वर, कारणरूप प्रकृति से सूक्ष्म और आत्मा से भी सूक्ष्म है । इसलिये वह सर्वशक्ति सम्पन्न है ।

बनाने वाला, बनने वाला पदार्थ से पृथक होता है अतः बनने वाला उपादान बनाने वाले का ज्ञानादि चैतन्यता गुणों को वह प्राप्त नहीं कर सकता जैसे बनाने वाला चैतन्य है तो उसके द्वारा जो पदार्थ बनते हैं, वे उस जैसे चैतन्य नहीं हो सकते । वैज्ञानिक जन जितने इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र दूरदर्शन, कम्प्यूटर आदि बनाये हैं वे सब जड़ कणों से बुद्धिपूर्वक बनाये गये हैं, परन्तु वे मन्त्र या उनके कण कभी भी स्वयं वैज्ञानिक नहीं बन सकते ।

जड़ पदार्थ अपने आप न हिल सकता है न स्वयं कुछ बुद्धिपूर्वक बन जाने के उसमें गुण हैं — अतः उन कणों में जो गुण और गति है सब ईश्वर की देन है । जिसे व्यापक, प्रेरक और प्रकाशक कहा जाता है । वेद मंत्र कहता है कि — ''यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना। अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमेय एको दस्वो वरुणो न राजति।। (ऋ० १४३.४)''

हे मनुष्यों ! जो विद्वानों के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, प्रशंसा योग्य, सच्चिदानन्द आदि लक्षणों वाला सर्वशक्तिमान् अनुपम, अतिसूक्ष्म, स्वयं प्रकाश स्वरूप और अन्तर्यामी परमेश्वर है, उसे योगांगो के अनुष्ठान की सिद्धि के द्वारा तुम अपने अन्दर जानो ।

वैज्ञानिक ऋषि पतंजलि ने अष्टांग योग द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया था, तभी तो अपने योग शास्त्र में कहा है — ''क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।। २४ योगदर्शन।। क्लेश, कर्मफल और वासनाओं से (अपरामृष्ट) असम्बद्ध पुरुष विशेष ईश्वर है । पाँच क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अमिनि वेश । ईश्वर जो पुरुष जीव-जीव नहीं किन्तु पुरुष विशेष है ।''

ईश्वर के अर्थ हैं 'ईशनशील अर्थात इच्छा मात्र से सम्पूर्ण जगत् के उद्धार करने में समर्थ ।' योगदर्शन में ''तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् (१, २५) ईश्वर को इस प्रकार समस्त ज्ञान का श्रोत कहते हुए बतलाया गया है कि वह (ईश्वर) जिसका काल विभाग नहीं कर सकता, पूर्ण (देव्य) ऋषियों का भी गुरु है । — यथा स पूर्व मेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् (योग० १.२६) इस प्रकार ईश्वर के अस्तित्व को तो सभी दर्शनकारों ने माना है यथा — ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफलम् दर्शनात्।'' (न्याय, ८.१.१९) मनुष्य के कर्मो के फल जिसके हाथ है, वही ईश्वर है । गीता के पांचवें अध्याय में दर्शाया है — ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां.....।

जिनका अन्तःकरण का अज्ञान विवेकज्ञान द्वारा नाश हो जाता है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस ब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को हृदय में प्रकाशित करता है अर्थात् साक्षात् करता है ।

''ईहशेश्वरसिद्धिः सिद्धा। साख्य दर्शन। सहि सर्ववित् सर्वकर्ता।।'' (सा०द० ३.५६)

इन सूत्रों से ईश्वर की सिद्धि स्पष्ट शब्दों में बताई गई है । ''वह चेतनतत्व ईश्वर, प्रकृति जिसके अधीज्ञान व्यवस्था और नियमपूर्वक पुरुष के अपवर्ग के लिये प्रवृत्त हो रही है, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है । (१) जिसने सबको उत्पन्न किया वही ईश्वर है । (२) जिसने सृष्टि की आदि में वेदों का बीजात्मक ज्ञान दिया वही सर्वज्ञ है । (३) जो सबमें प्राण के समान व्यापक और प्रकाशक है वही ब्रह्म है । (४) ईश्वर ने सूर्य की एक महत्वपूर्ण सृष्टि की है । किन्तु सूर्य में किन किन उपादानों से कितनी संख्याओं में और किन-किन मात्राओं में कैसे क्या हो रहा है, इसका सही ज्ञान किसी को नहीं है । अतः जिसने सूर्यादि को उत्पन्न करके जिसमें अरबों वर्षो से तेजस्कृय उपादानों को अविरत ऊर्जा एवं अग्नि शिखाओं को उत्पन्न करने वाली उसके गर्भ में दिव्य अनजाने शक्तियों को प्रदान कर रहा है, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है और जिन सूर्य चन्द्रादि के प्रभाव तथा पंचतत्वों से समुद्र एवं विभिन्न प्रकार के वनस्पतियों और जीवों का जन्म हुआ है, उन सबका निमित्त कारण ईश्वर है ।''

बहुत से वैज्ञानिक जन आत्मा और परमात्मा को नहीं मानते । पर वह कोई भौतिक पदार्थ तो है नहीं कि जैसे न्यूट्रोनों कणों से टक्कर लगाया और हिंगवोसन = गॉडपार्टिकल अर्थात् सृजन कारक कण (जो प्रकाश की गति से कई गुणा अधिक है) का आविष्कार हो गया । उसी प्रकार सर्वव्यापक प्रेरक और प्रकाशक ईश्वर को भी वैज्ञानिक, उसी जैसा कण के रूप में देखना चाहते हैं, पर यह संभव नहीं है, क्योंकि वह तो उनसे परे और सर्वव्यापक होने से उसकी कोई गति नहीं है । अतः उन्हें किसी मशीन के माध्यम से ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता । क्योंकि दिल्ली जाने वाली ट्रेन से कोई कोलकाता नहीं पहुंच सकता । ईश्वर को देखने और उसके आनन्द को बोध करने के लिये साधन अलग है ।

ऋषि दयानन्द की समाधि कभी-कभी १८ घंटे की हो जाती थी, इसलिये उन्हें भी अष्टांग योग की सिद्धि से सच्चे शिव परमेश्वर का साक्षात्कार हो गया था । उदाहरण के लिये — एकबार ऋषिदयानन्द से नास्तिक मुन्शीराम ने कहा था कि आपकी तर्कना शक्ति प्रबल है — आपने हमें चुप तो करा दिया, परन्तु परमात्मा की कोई हस्ती है ऐसा विश्वास नहीं दिलाया ? ऋषि ने कहा — ''श्रद्धा की वेदी पर विश्वास का दीपक जलाओ, परमेश्वर का साक्षात्कार हो जायेगा । इस मानसिक दीक्षा ने उन्हें स्वामी श्रद्धानन्द बना दिया ।''

प्रश्न — ईश्वर जब मूर्ति में भी है तो वह चेतन क्यों नहीं हो जाता ।

उत्तर — वायु में प्राणादि अनेक गुण है, वह दिखता नहीं है पर सब जगह मौजूद है, उससे कोई अलग नहीं है, वह मूर्ति मानव एवं मुर्दो में भी है, किन्तु जैसे मूर्ति जड़ होने से वायु में विद्यमान प्राण को ग्रहण नहीं कर सकती, उसी प्रकार सर्वोपरि ईश्वर की चैतन्यता और सर्वज्ञता के गुणों को जड़ पदार्थ प्राप्त नहीं कर सकते । केवल चेतन प्राणी ही वायु से प्राण को ग्रहण कर सकते हैं ।

प्रश्न — जब मानव को ईश्वर प्राप्त है, तो उसकी प्राप्ति के लिये कामना क्यों की जाती है ?

उत्तर — सच्चिदानन्द परमात्मा तो सभी को प्राप्त है, पर सतचित्, जीव को उसका आनन्द अप्राप्त है जैसे — मानव को रसगुल्ला तो प्राप्त है पर उसका स्वाद कैसा है नहीं जानता, जब उसे खाता है

तभी पता लगता है कि वह कैसा है । इसी प्रकार जब तक मनुष्य ध्यान, धारणा और साधना नहीं करता तब तक ईश्वरानन्द का बोध उसे नहीं हो सकता । तात्पर्य यह कि सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर में सत्= प्रकृति से बने यह सारा संसार है । 'चित्त = जीव है और आनन्द ईश्वर है । जब तक जीव अर्थात् मनुष्य संसार के तरफ झुका रहेगा तब तक ईश्वरानन्द से वंचित रहेगा और जब संसार में रहते हुए ईश्वर के तरफ ध्यान देगा तभी योगांगों द्वारा वह स्वः स्वर्गरूप आनन्द को प्राप्त करेगा ।'

प्रश्न — माता-पिता के अनुसार ही गर्भ में शिशु का सर्वांग बनता है और जब जन्म लेकर बालक बड़ा होता है तो उसका मन, बुद्धि = मेधा और चेतना का उपज मस्तिष्क के स्नायु मण्डलों से ही होता है । कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों का सम्बन्ध भी मस्तिष्क के करोड़ों स्नायु कोशिकाओं से लगा रहता है। अतः उन सबका केन्द्र भौतिक मस्तिष्क ही है आत्मा नहीं । इस विषय में आपका क्या कहना है ?

उत्तर — अमैथूनी काल में मानव उत्पत्ति के पूर्व, कोई नहीं जानता था कि स्त्री-पुरुष की सांचा किस डिजाइन के अनुसार बनाया जायेगा । किन्तु कोई सर्वज्ञ (परम माता पिता के समान) अदृश्य में विद्यमान था, तभी तो पंचतत्वों के सूक्ष्म भूतों तथा सूर्य चन्द्र एवं दो भिन्न शक्तियों के गुणानुसार स्त्री और पुरुष का पहले सूक्ष्म शरीर में आकृति बनाया, उसके पश्चात अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों एवं सूर्य के प्रकाश से जब हजारों वर्षों में रज-वीर्य जैसे उपादान बन गये तब सूक्ष्म शरीर के साथ आत्माओं के संयोग से, उन दोनों के एकत्रित हो जाने पर अनेक स्त्रीलिंग और पुलिंग के भ्रूण उत्पन्न हो गये और वे भूमि माता की कुक्षी से रस प्राप्त कर पलने लगे, उसके पश्चात नर और नारी शिशु रूप में पैदा होकर पेट कुनिया सरकने लगे और पास में मौजूद फलों के रस को प्राप्त कर, हाथ-पैरों से चौपाया चलने लगे, उसके पश्चात बालक बालिका बढ़ कर युवा-युवती सब तिब्बत के आसपास विचरने लगे ।

इसी विषय को संक्षेप में 'वेद ही ईश्वरीय ज्ञान में इस प्रकार लिखा गया है' — "नर नारी के संयोग के बिना ही जो शरीर धारण करते हैं उसे अमैथूनी सृष्टि कहते हैं । ईश्वरीय व्यवस्थानुसार रज-वीर्य के मूलतत्वों के किसी विशिष्ट आवरण में इकट्ठा होने पर देह रचना आरम्भ हो जाती है । कालान्तर में देह परिपक्व हो जाने पर आवरण फट जाते हैं और बने बनाये शरीर बाहर आ जाते हैं । यह ऐश्वरीय सृष्टि कहाती है । तत्पश्चात् सजातीय प्रजनन का क्रम चालू हो जाता है और सांचे में ढल ढल कर नित्य नये शरीर बनने लगते हैं । परमेश्वर ने जीवात्मा को नहीं बनाया, अपितु उनके देह को बनाया ।"

अतः स्त्री-पुरुष के विज्ञान संगत शरीर का निर्माण आत्मा के ज्ञातृव्य, कर्तृत्व और भोक्तृत्व के लिये ज्ञान स्वरूप परमात्मा के नियम द्वारा मस्तिष्क की रचना भी अपने लिये नहीं आत्मा के लिये बना ताकि उसके द्वारा वह सोच-विचार और स्मरण कर सके । माना कि मन, बुद्धि, चेतना स्नायुओं का उपज मस्तिष्क है तो उन साधनों से उनका भोग और सुख, दुःखों का अनुभव कौन करता है ? देखिये आम को उत्पन्न करने वाला आम का वृक्ष है, पर उसका भोग (आम नहीं) मनुष्य करता है । इसी प्रकार शरीर में जितने साधन बने हैं वह सब सूक्ष्म शरीर से आत्मा के लिये बने हैं ।

मु० पो० मुरारई,

मो० - ८१५८०७८०११ जिला-बीरभूम (प० बंगाल)-७३१२१९

—o—

सरमा पणि संवाद – एक विवेचन

– उदयन आर्य (शोध छात्र)

विश्व के पुस्तकालय में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है । प्राचीन भारतीय ऋषियों का मन्तव्य है कि सृष्टि के आदि में परमपिता परमात्मा ने ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान मनुष्यों को प्रदान किया । यह वेद परमपिता के निःश्वास के समान हैं । इन ऋचाओं का मुख्य विषय स्तुति है और इस स्तुति के माध्यम से ऋषि परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयास करते हैं । मंगलेच्छुक मनुष्य परम पवित्र इन ऋचाओं का अध्ययन करता है और स्वयं परमात्मा से ऋचाओं में स्थापित रस का आनन्द लेता है[१] ।

कालान्तर में जब वेदों का साक्षात् दर्शन कठिन हो गया तो अन्य ग्रन्थ लिखे गये ।[२] ब्रह्मा का (वेद) व्याख्यान ही ब्राह्मण कहलाता है । इन ब्राह्मणों में वेदों के भावों को यागों में विनियोग के साथ साथ मन्त्रों की व्याख्या को रोचक बनाने के लिए नाटक का रूप दिया गया और इन नाटकों को जन तक पहुँचाने के लिए आख्यान के रूप में व्याख्यायें की गई ।

सरमा तथा पणि संवाद :–

सरमा शब्द निर्वचन प्रसंग में उद्धृत ऋग्वेद १०.१०८.१ के व्याख्यान में प्राप्त होता है । आचार्य यास्क का कथन है कि इन्द्र द्वारा प्रहित देवशुनी सरमा ने पणियों से संवाद किया ।[३] पणियां ने देवों की गाय चुरा ली थी । इन्द्र ने सरमा को गवान्वेषण के लिए भेजा था । यह एक प्रसिद्ध आख्यान है।

आचार्य यास्क द्वारा सरमा माध्यमिक देवताओं में पठित है । वे उसे शीघ्रगामिनी होने से सरमा मानते हैं । वस्तुतः मैत्रायणी संहिता के अनुसार भी सरमा वाक् ही है[४] गाय रश्मियां हैं[५] इस प्रकार यह आख्यान सूर्य रश्मियों के अन्वेषण का आलंकारिक वर्णन है । निरुक्त शास्त्र के अनुसार ''**ऋषेः दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता**''[६] अर्थात् सब जगत के प्रेरक परमात्मा अद्रष्ट अर्थों को आख्यान के माध्यम से उपदिष्ट करते हैं । वेदार्थ परम्परा के अनुसार मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं । आधिभौतिक, आदिदैविक, आध्यात्मिक, तीनों दृष्टियों से इस सूक्त के पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि यह सूक्त किन्हीं विशेष अर्थो को कहता है । विश्लेषण के लिए इस संवाद में प्रयुक्त शब्दों के अर्थो को व्याकरण और निरुक्त के अनुसार समझने की आवश्यकता है ।

क्रमशः एक एक शब्द पर विचार करते है ।

पणयः : ऋग्वेद में १६ बार प्रयुक्त बहुबचनान्त पणयः शब्द तथा चार बार एकबचनान्त पणि शब्द का प्रयोग है । पणि शब्द पण् व्यवहारे स्तुतौ च धातु से अच् प्रत्यय करके पुनः मतुवर्थ में अत ''इनिठनौ से इति प्रत्यय करके सिद्ध होता है । यः पणते व्यवहरति स्तौति स पणिः अथवा कर्मवाच्य

में पण्यते व्यवहियते सा पणिः।'' अर्थात् जिसके साथ हमारा व्यवहार होता है और जिसके बिना हमारा जीवन व्यवहार नहीं चल सकता है उसे पणि कहते हैं । इस प्रकार यह पणि शब्द मेघ का वाचक है। अथवा वायु का वाचक है । इस पणि को वृत्र अथवा असुर कहा गया है आचार्य यास्क ने वृत्रं वृणोतेः कहकर जो आवरण करता है ढक लेता है उसे वृत्र कहते हैं । वही वृत्र वरण कर लेने वाला मेघ जब वारिदान करता है तब देव कहलाता है । किन्तु जब जल को सुरक्षित कर लेता है बरसने नहीं देता, तब वह असुर कहलाता है । इसकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं राति ददाति इति रः सु शोभनं राति ददाति इति सुरः नु सुरः असुरः अर्थात् इस यौगिक अर्थ के अनुसार असुर शब्द पणि के प्रसंग में अवरोधक मेघ है । (२) इन्द्र, निरुक्तकार यास्क के अनुसार इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति इति इन्द्रः, इराम जलानां आनेता इन्द्रः = सूर्य । इसी तरह आदिदैविक अर्थ में इन्द्र सूर्य का वाचक है आध्यात्मिक अर्थ में इन्द्र जीवात्मा और परमात्मा को कहते हैं । इन्द्र सूर्य की गावः = रश्मयः गावः इति रश्मि नामसु पठितम् (निरुक्त) अब इस कथा का भाव हुआ कि इन्द्र = सूर्य की गावः, रश्मियों को जल न देने वाले असुरों = मेघों ने आच्छन्न कर लिया है । इन्द्र के बार बार सूचना देने पर भी पणियों ने इन्द्र की गायों को नहीं छोड़ा और जिससे प्रजा व्याकुल होने लगी, तब इन्द्र ने दूती भेजी । दूती को यहां पर देवशुनी शर्मा कहा गया है । सरति गच्छति सर्वत्र इति शरमा, देवानां सुनी सूचिका दूती वा देवसूनी, जो तेजी से गति करती है और देवों की दिव्यता की सूचना देती है । वह विद्युत ही यहाँ देवसुनी शरमा कही गई है । इस प्रकार देवशुनी बादल की गड़गड़ाहट रूपी ध्वनि के साथ पणियों से संवाद करती है और कहती है कि हमारे राजा की गौओं को छोड़ दो नहीं तो हमारा बलवान राजा दण्ड देगा । पणियों ने देवशुनी की बात नहीं मानी, तब इन्द्र ने वज्र प्रहार कर अर्थात् वायु के प्रहार के माध्यम से पणियों को मारकर धरती पर सुला दिया और अपनी गायों को मुक्त करा लिया । सारा संसार वृष्टि से सुखी हुआ और सूर्य की किरणें चारों और फैल गई । वैदिक आख्यानों को सामान्य अर्थो में ग्रहण न करके विशिष्ट एवं यौगिक अर्थो में ही ग्रहण करना चाहिए । शब्दों के यौगिक अर्थो के आलोक में इन आख्यानों को देखने पर वेदार्थ की उत्तम आदर्श नव्य और दिव्य प्रक्रिया का ज्ञान होता है ।

अन्त में प्रश्न आता है कि वैदिक आख्यानों की वास्तविकता स्वीकरणीय है अथवा अस्वीकरणीय ? तो इसका संक्षेप में उत्तर यह है कि यदि रूपकालंकार की दृष्टि से वे आख्यान मन्त्रार्थ से संगत होते हैं तो वे आलंकारिक रूप से अथवा शाश्वत घटित होने वाली घटनाओं के ऐतिहासिक शैली के चित्रण के रूप में ग्राह्य एवं स्वीकरणीय हैं परन्तु यदि मन्त्र सूक्त गत संवादादि का सम्बन्ध यदि किसी अवरकालिक पुराण महाभारातादि ग्रन्थों में वर्णित अनित्य इतिहास से बलात् जोड़ा गया है और वह गठजोड़ असंगत और अटपटा लग रहा है तो उसे वास्तविक रूप में स्वीकार न करके सर्वथा अवास्तविक ही मानना चाहिए । तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च[७], तथा नाम च

धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकतस्य च तोकम्[८] के धातुज्ञ वैयाकरणों में विशेषः शाकटायनाचार्य तथा सम्पूर्ण नैरुक्त समुदाय वेद के शब्दों को धातुज अर्थात् यौगिक मानते हैं । इस दृष्टि से वेद मन्त्रों से कोई रुढ़ि अर्थ या मानवीय अनित्य इतिहास के वर्णन की सम्भावना वहां नहीं हो सकती है । अतः सारमेयाश्वानी, यम—यमी, अश्विनी, देवापि, सरमा, पणि विश्वामित्र, ग्रत्समद इन्द्र आदि पदों से किसी लौकिक कथानक की कल्पना वेदों में करना अन्धाधुन्ध है । अतः ऐसे शब्दों और उनसे अभिव्यक्त होने वाले कथोपकथन से किसी अन्य प्राकृतिक व वैज्ञानिक तथ्य का अनुसन्धान करना ही युक्ति संगत होगा। यदि कोई आख्यान मन्त्रार्थ को स्पष्ट करने के लिए कल्पित किये गये हैं तो उनको आलंकारिक दृष्टि से संगत मानना चाहिए । मन्त्रों मे उपमा, रूपक, श्लेषादि अलंकारों का प्रयोग प्राचीन और अर्वाचीन प्रायः सभी भाष्यकारों ने स्वीकार किया । वैदिक आख्यानों में प्राकृतिकता, अलौकिकता आदि का वर्णन मिलता है । उर्वशी आख्यान में मेघों का और विद्युत का, सरमा, पणि आख्यान में विद्युत् और अवर्षणशील मेघों का, इन्द्र वृत्र आख्यान में विद्युत् और मेघ के युद्ध का वर्णन है । वैदिक ग्रन्थों ने इनका प्राकृतिक अर्थ किया है ।

उपरिगत विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्रगत इतिहास अथवा आख्यान तत्वतः औपचारिक, अर्थवादात्मक उपमार्थक अथवा आलंकारिक हैं, आधुनिक अर्थ में ऐतिहासिक नहीं । अतः उनके सम्यक् अवगम एवं विश्लेषण में अतीव सावधानी तथा चिन्तन की अपेक्षा है ।

दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

—०—

पाद टिप्पणी :-

१. यः पावमानीरध्येतृषिभिः सम्भूत रसम् — ऋग्वेद ९.६७.३१
२. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः तेऽवरेभ्योऽसाक्षात् कृत धर्मभ्य उपदेशनं मंत्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्म ग्रहणाय ग्रन्थं समाम्नासिषु वेदं च वेदांगानि च। निरुक्त १.२०
३. निरुक्त ११.२५ देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूढ इत्याख्यानम् ।
४. वाग् वै सरमा
५. निरुक्त २.७ सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यते ।
६. निरुक्त १०.४६
७. निरुक्त १/१२
८. पातंजल महाभाष्य ३.३१

।।ओ३म्।।

अध्यापक सदाचारी और सत्यनिष्ठ हों

– डॉ॰ अशोक आर्य

आज हमारी शिक्षा की अवस्था अत्यधिक शोचनीय हो गयी है । हमारी शिक्षा की इस शोचनीय दशा के लिए विद्यार्थियों को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है क्योंकि आज का विद्यार्थी उच्छृंखल तथा अनुशासनहीन हो गया है किन्तु यह सब केवल विद्यार्थी का ही दोष नहीं है । शिक्षा के इस ह्रास के कारणों की खोज करने पर हमें पता चलता है शिक्षा की इस समस्या का दोषी केवल विद्यार्थी ही नहीं है, इसके लिए अध्यापक भी समान रूप से दोषी हैं । इसके लिए शिक्षकों का भी समान रूप से दोष सामने आता है । वेद में तो शिक्षक के लिए कहा गया है कि :—

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः।। ऋग्वेद ३.८.४।।

मन्त्र स्पष्ट सन्देश, उपदेश देते हुए कह रहा है कि शिष्य को वर्त्तमान के सन्दर्भ में विद्यार्थी को अत्यंत धैर्य से युक्त करने, तत्वदर्शी बनाने, उसे बहुत ही उत्तम कर्म करने वाला बनाने तथा मन से अपने शिष्य को सत्यनिष्ठा से विद्वान बनाने का कार्य गुरु अथवा अध्यापक करता है । स्पष्ट है कि आज के अध्यापक का भी प्राचीन गुरु के ही समान यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने शिष्यों को सब प्रकार से विद्वान् बनाने का कार्य करे ।

प्राचीनकाल में शिष्य लोग गुरु का अत्यधिक आदर सत्कार करते थे । गुरु ही था जो शिष्य को शूद्र के स्थान से उठाकर उत्तम मानव बनाने का कार्य करता था । गुरु की विद्वता के कारण ही शिष्य उस विद्वत्व में से अपना भाग लेने के लिए गुरु की सेवा करते थे, गुरु की चरणधूलि लेने के लिए उन सबमें स्पर्धा सी ही लगी रहती थी । वह अपने सेवाभाव से गुरु से सब प्रकार की शिक्षाएँ, सब प्रकार की विद्याएँ निकाल लेते थे । इस कारण ही गुरु में वह अपनी माता, अपने पिता का बिम्ब देखते थे और गुरु को अपने माता-पिता का स्थान देते थे ।

आज यह सब अवस्था बदल गई है । आज इस प्रकार के दिव्य गुणों वाले शिक्षक बहुत कम मिलते हैं जो अपने विद्यार्थी को निस्वार्थभाव से शिक्षा दे सकें । ऐसे शिक्षक तो अंगुली पर ही गिने जा सकते हैं, जिनके प्रति विद्यार्थी स्वयं ही उत्सुक हो जावे तथा उन्हे माता पिता के समान सम्मान दे सके । आज तो अवस्था यहाँ तक आ चुकी है कि आज के अनेक शिक्षक पतित हो गए हैं । इनमें सदाचार के नाम पर कुछ बचा ही नहीं है । इन कुछ पतित शिक्षकों के कारण सब शिक्षक ही बदनाम हो रहे हैं । इस प्रकार के शिक्षक से उत्तम शिक्षा मिलेगी, इस प्रकार की अपेक्षा करना ही उपहासास्पद है ।

आज के कुछ अध्यापक विद्यार्थियों के अनुशासनहीनता का कारण बन गए हैं । उससे मैत्री कर वह उसे भी अपनी बुराइयों का भागीदार बना लेता है । अपने विद्यार्थी को अपने गलत कार्यों में भागीदार बनाकर वह विद्यार्थी को भी गलत मार्ग पर ले जाता है । वह अपनी अनुशासनहीनता, अपने दुराचार तथा अपने भ्रष्टाचार का नमूना विद्यार्थी के सामने रखता है और ना समझ विद्यार्थी भी उसका अनुसरण करते हुए अनुशासनहीन, दुराचारी, व्यभिचारी, भ्रष्ट तथा विद्या की अर्थी उठाने वाला बनाता चला जा रहा है । इस सब कारण से आज के अध्यापक की प्रतिष्ठा समाप्त हो रही है ।

इस समस्या का एकमात्र समाधान यह है कि हमारे आज के विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को चलाने वाले उच्चस्थ अधिकारी अपने आधीन आने वाले शिक्षकों अथवा प्राध्यापकों को नियुक्त करते समय यह ध्यान रखें की यह आचार्यगण सदाचारी हों, उत्तम आचरण वाले हों, इस प्रकार के हो कि जिनके जीवनों से ही शिक्षार्थी प्रेरणा पा सकें तथा यह सदाचार के गुणों को अपने शिष्यों में बांटने में सक्षम हों । जब तक शिक्षक के सदाचार का उदाहरण शिष्य के सामने नहीं आता तब तक शिष्य कभी भी सदाचारी नहीं बन सकता इसलिए उत्तम सदाचार वाले पुरुषार्थी विद्वान् को ही शिक्षक के पद पर लाना आवश्यक हो जाता है । यह ही विद्यार्थी में अनुशासनहीनता समाप्त कर उन्हें अनुशासनप्रिय बना सकता है । अन्य कोई उपाय है ही नहीं ।

आज भारत सहित विश्व के प्रायः सब देशों में एक नई परम्परा आरम्भ हो गई है । हमारे नगरों के चौराहों पर प्रायः नग्न अथवा अर्धनग्न अत्यंत अश्लील चित्रों का बड़े धूम धड़ाके से प्रदर्शन हो रहा है । आज यह सब सामान्य सा ही हो गया है । विद्यार्थियों के विलासी तथा अनुशासनहीन होने का यह भी एक प्रमुख कारण बन गया है । देश को इसके कारण बहुत हानि हो रही है तथा देश की भावी पीढ़ी का नाश हो रहा है किन्तु हमारी सरकार का इस ओर ध्यान जाता ही नहीं । यहाँ तक कि स्थानीय प्रशासन के अधिकारी भी इस ओर से आँखें मूंदे हुए हैं । विद्यार्थियों पर तो इन अश्लील चित्रों का बुरा प्रभाव होता ही है साथ ही अविवाहित कुमार कुमारियों पर भी इन चित्रों का बुरा प्रभाव पड़ता है । इन चित्रों को देखकर युवाओं का नैतिक पतन होने लगता है । उनमें कामुकता बढ़ जाती है तथा वह अनुशासन से दूर हो जाते हैं । इसलिए इसका भी समाधान आवश्यक हो जाता है । इस कारण ही हमारे प्राचीन शिक्षा केन्द्र अर्थात् गुरुकुल नगरों से दूर, नदियों के किनारे जंगल में अथवा पर्वतों की सुरम्य तलहटियों में होते थे । जहाँ किसी प्रकार की बुराई नहीं पहुँच पाती थी। इसी कारण ही हमारे विद्यार्थी गुरुभक्त तथा अनुशासनप्रिय होते थे ।

मैं अबोहर में एक महाविद्यालय का विद्यार्थी था । इन दिनों आर्य युवक समाज का नगर में ही नहीं संलग्न क्षेत्रों में भी बहुत प्रतिष्ठा का स्थान था । मैं भी इसका सदस्य था । नगर में बढ़ रही अनुशासनहीनता तथा युवकों के गंदे विचारों के कारणों की इस समाज ने खोज की और पाया कि

अश्लील चित्र ही इस बुराई का कारण हैं। इस बुराई का मुख्य केन्द्र नाई की दुकान हुआ करती थी। इन दुकानों पर बाल कटाने तो केवल पुरुष वर्ग ही जाता था किन्तु अश्लील, अर्धनग्न तथा चरित्र को विकृत करने वाले चित्र ही लगे होते थे। हमने दिवाली से एक महीना पूर्व नगर की सब दुकानों तथा घरों का निरीक्षण किया और लोगों को अच्छे महापुरुषों के चित्र लगाने के लिए प्रेरणा दी। इसका इतना प्रभाव हुआ कि हम जब भी किसी के घर अथवा दुकान के पास पहुँचते तो उसके मालिक हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते और कहते कि हमारे स्थान को देखो कोई गंदा चित्र नहीं है।

इस सबसे उत्साहित होकर हमने घोषणा की कि जिसके घर अथवा दुकान की जाँच करने पर हमें सबसे अच्छे चित्र मिले तो उसे पुरस्कार दिया जायेगा। चित्र का चरित्र पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए सदा अच्छे चित्र ही लगाए जायें। चित्र किस प्रकार के लगाए जावें इसके लिए दीवाली पर हम एक चित्र प्रदर्शनी लगाने जा रहे हैं, उसे अवश्य देखिए। टाउनहॉल में यह प्रदर्शनी लगी और इसे पूरा नगर देखने के लिए उमड़ पड़ा। यह चित्र भी हमने लोगों के घरों और दुकानों से इस प्रकार के माँग कर लिए कि यह चित्र बहुत सुन्दर हैं। यह चित्र प्रदर्शनी में लगेगा इससे भी लोग उत्साहित होते थे। इस प्रकार का कार्य हम निरंतर कुछ वर्ष करते रहे और प्रदर्शनी के बाद यह चित्र जिसके यहाँ से लिए जाते थे, उन्हें लौटा देते थे। इस अवसर पर हम एक चित्रकला प्रतियोगिता भी किया करते थे।

इस प्रकार की प्रदर्शनी हमने एक बार फिरोजपुर के हुसैनीवाला बार्डर पर शहीद भगत सिंह के शहीदी दिवस पर उनकी समाधि पर लगाई, हजारों लोगों ने इसे देखा और प्रशंसा की। मैंने यह प्रदर्शिनी युवा प्रताप मंच के झंडे के नीचे गिदड़बाहा में भी लगाई। यहाँ भी इसका उत्तम प्रभाव रहा।

इस सबसे स्पष्ट होता है कि जो भी उत्तम दिखाई देता है उसका उत्तम और जो भी बुरा मिलता है, उसका बुरा प्रभाव युवक के हृदयों पर अवश्य ही अंकित होता है। इसलिए ही कहा है कि अध्यापक सदाचारी, सत्यनिष्ठ, अनुशासन प्रिय तथा बुराइयों से दूर रहने वाला होना चाहिए ताकि विद्यार्थी भी उसका अनुसरण करते हैं और सचरित्र अध्यापक का विद्यार्थी भी सचरित्र ही होता है। अन्यथा इसका युवक के लिए ब्रह्मचर्य के विरुद्ध प्रभाव होता है। इसलिए देश के नवनिर्माण में अध्यापक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उसके उत्तम योगदान के लिए उसका सदाचारी होना ही उत्तम है।

१०४, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी
चलभाष - ०९७१८५२८०६८ गाजियाबाद-२०१०१०

—०—

।।ओ३म्।।

बारूद के एक ढेर पर बैठी है यह दुनिया

– **पं० उम्मेद सिंह 'विशारद'**, वैदिक प्रचारक

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी, महान समाज सेवी व दूरदर्शी थे इसीलिए उन्होंने स्वयं की मुक्ति का मार्ग न अपनाकर मानव समाज की सुख शान्ति हेतु समाज को प्राचीन, वैदिक संस्कृति संस्कारों से जोड़ने का अथक प्रयास किया था ।

वे ऐसा समाज देखना चाहते थे जिसमें न साम्राज्यवाद हो, न पूंजीवाद हो, न धर्म के झगड़े हो न जाति के, न धन की महता हो न शस्त्र बल की । सारी दुनिया एक राष्ट्र हो, मनुष्य मात्र की एक जाति हो । वर्ण व्यवस्था में हर नर नारी का अधिकार हो, सम्मान हो । एक ईश्वर की पूजा हो, विवेक ही शास्त्र हो तथा विश्व एक कुटुम्ब हो । सभ्य समाज के द्वारा ऋषि दयानन्द नये संसार की तरफ दुनिया को ले जाना चाहते थे । इन विचारों को सदैव के लिए क्रियान्वित करने के लिए वह आर्य समाज संगठन बना कर गये थे । यदि यह निर्दयी समाज विष द्वारा उनको शहीद न करता तो वह पूरे जीवन में संसार की काया पलट सकते थे । फिर भी वह बहुत कुछ कर गये ।

मनुष्य की वर्तमान दुर्दशा का मूल कारण आर्थिक, राजनीतिक या भौतिक ही नहीं वरन् हृदयगत संकीर्णता है । यही कारण है आज, राजनैतिक विषमता, धार्मिक विषमता, भौतिक विषमता, पूजा पद्वति विषमता एवं संसार में परमाणु विषमता आदि से संसार बारूद के ढेर पर बैठा है ।

यह वैज्ञानिक युग है, विज्ञान क्षेत्र की प्रतिभायें इस क्षेत्र में विशेष रूप से अग्रणी है । शासकों को एवं औद्योगिकों को आयुध, भौतिकी एवं प्रौद्योगिकी को इस स्थान पर प्रोत्साहन मिलकर चरम सीमा पर जा पहुँचा है । आणविक हथियारों की होड़ से दुनिया में आज इन आयुधों का इतना विशाल भण्डार हो गया है कि अगला विश्व युद्ध अब आणविक हथियारों में ही लड़ा जायेगा । जिसमें सभी कुछ नष्ट हो जायेगा । समस्त संसार रेडियोधर्मिता के कारण मनुष्य के रहने योग्य नहीं रह जायेगा।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने कहा था कि चौथा विश्व युद्ध पत्थर के हथियारों से लड़ा जायेगा। यह बात उस समय भले ही सामान्य ढंग से कही गयी हो परन्तु वर्तमान स्थिति पर दृष्टि रखने से यह आभास हो जाता है कि इस कथन के पीछे गम्भीर आशय छिपा हुआ था । तकनीकि ही तकनीकि को खा जायेगी । ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि मनुष्य के पास पत्थरों के अतिरिक्त कुछ रह ही नहीं जायेगा।

प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध से लेकर आज तक संहारक अस्त्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है । नये प्रकार के अस्त्रों में आश्चर्यजनक परिवर्तन किये गये हैं । तीसरा विश्व युद्ध हुआ तो उसमें इससे भी अधिक संहारक अस्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है । इसका अनुमान लगाना कठिन है । कुछ देश वर्षों से अनुसंधान करने के उद्देश्य से उपग्रह छोड़ रहे हैं । विशेषज्ञों का कहना है कि अब ऐसे भी उपग्रह विकसित किये जा चुके हैं, जो इच्छानुसार कहीं पर भी बम गिरा सकते हैं । इन दिनों रासायनिक युद्धों की चर्चा जोरों पर है । सारे विकसित देशों में अणु परीक्षणों की होड़ लगी हुई है। कहते तो यह है कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी से मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के साधन जुटाये जा रहे हैं । किन्तु यह भी सत्य है, मनुष्य के मौत का घातक इन्तजाम भी किए जा रहे हैं ।

नये समाज की रूपरेखा मेरे विचारों से कैसी हो :- जातियाँ, राष्ट्रीय पक्षपात केवल एक धोखा है, क्योंकि ईश्वर ने हम सबको एक ही जाति में उत्पन्न किया है । फिर मनुष्य इस प्रकार के पक्षपातों के शिकार क्यों बनते हैं । ईश्वर ने मनुष्यों को इसलिए नहीं उत्पन्न किया है कि वह एक दूसरे का विनाश करते रहें । मानव, मानव से प्रेम रखना, देश से प्रेम रखना ही धर्म व विश्वास है । अर्थात् वैश्विक द्वन्द मानव समाज में भयंकर बारूद है, तथा मानव जगत में शीत युद्ध को जन्म दे रही है ।

नये युग के दो आधार अध्यात्म और विज्ञान :- सृष्टि रचना के साथ-साथ ईश्वर ने मनुष्यों के सर्वांगीण सुख शान्ति के लिए वेद ज्ञान, वैदिक धर्म, वैदिक व्यवस्था और वैदिक ईश्वरीय धर्म तथा सृष्टिक्रम विज्ञान के अनुसार दिये है । क्योंकि ईश्वर सत्य है, ईश्वरीय विज्ञान सत्य है । इसलिए विज्ञान को सत्य की संतान कह सकते है यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तों विज्ञान का दृष्टिकोण सत्य का रहस्योद्घाटन करना ही था किन्तु अन्तः स्वार्थों ने विज्ञान की उन्नति को मानवों का संहार का केन्द्र बना दिया है । इस ईश्वरीय व्यवस्था के उल्लंघन से ही संसार बारूद के ढेर पर बैठा है ।

आध्यात्म धर्म सार्वभौम है । वह देश, जाति और काल के अन्तर में कटता बंटता नहीं और न उसमें उतार चढ़ाव आते हैं । धर्म को सार्वजनीन, सार्वकालीन, सार्वभौम और शाश्वत सनातन कहा जा सकता है । सम्पूर्ण मानव जगत के लिए ईश्वर ने एक ही धर्म दिया है वह है वैदिक धर्म ।

एक ओर संसार के राष्ट्रों में विचार शक्ति, धन शक्ति, कथित विज्ञान की शक्ति की खींचतान चल रही है । वित्तेषणा, लोकेषणा और निजि एषणाओं में संसार के मुल्क बुरी तरह ग्रस्त हो रहे हैं। संसार की सुख शान्ति की ठेकेदारी आज चन्द मुट्ठी भर राजनैतिक नेताओं के हाथ में चली गई है । वे चाहे तो जरा सी बात के लिए लाखों मनुष्यों को मक्खी की तरह मरवा सकते हैं ।

इस अन्धकार युग का प्रारम्भ पाँच हजार वर्ष पूर्व हो गया था और उसने अब परम्परा का रूप धारण कर लिया है । किन्तु ईश्वर की इच्छा व मनुष्यों का प्रबल सत्य पुरुषार्थ सम्मिलित रूप से आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकता है । उसकी पूर्ति भले ही कठिन हो लेकिन असम्भव नहीं है ।

विनाश लीला टाली जा सकती है :– जब तक मनुष्यों के चिन्तन में भ्रष्टता रहेगी तब तक मानवीय समुदाय में परिवर्तन आने वाला नहीं है । समाज का वर्तमान ढर्रा तभी बदल सकता है जब समाज में अग्रणी बुद्धिजीवी जाग जावें और संगठन के रूप में जागरूकता विकसित हो ।

आज धर्म सम्प्रदायों में सभी मार्गदर्शकों को तथा आर्य समाज संगठन को आगे आकर तमाम अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ, उग्रवाद, अलगाव विचारधारा, वर्गवाद, जातिवाद, कुप्रथायें आदि के निवारण के लिए एक स्वर में आवाज उठानी होगी ।

मानव जाति आज जीवन-मरण के झूले में झूल रही है हर ऋषि सन्तान मानवीय गरिमा के प्रहरी को अपने मानव समाज के डूबने से बचाने हेतु पवित्रतम कार्य का उत्तरदायित्व निर्वाह करना होगा । हमें उन उत्तरादायित्व के निर्वाह के लिए तत्पर होना ही चाहिए जो इस आपत्तिकाल, आपत्ति धर्म की तरह हमारे कन्धों पर लद गये हैं । समय की एवं युग की पुकार यहीं है इस समस्या पर चिन्तन करना चाहिए।

गढ़ निवास मोहकमपुर
मोबाईल - ९४११५१२०१९
(देहरादून) उत्तराखण्ड

—o—

श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य

– परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

विश्व वाङ्मय में श्रीमद्भगवद्गीता एक परम रहस्यमय आध्यात्मिक ग्रन्थ है । इसमें स्वयं महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मानव मात्र के कल्याण के लिए दिव्य उपदेश दिया है । यह आनन्द सुधा का छलकता हुआ अगाध महार्णव है । इसमें लौकिक और पारलौकिक अभ्युत्थान तथा आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक जीवन दर्शन प्रभृति प्रायः सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों का समावेश है । इसके अध्ययन और अनुशीलन से ऋतंभरा विवेक विकसित होती है, हृदय उदार होता है और व्यावहारिक जीवन में सही निर्णय एवं सन्तुलित कार्य कलाप के लिए दिव्य प्रेरणा मिलती है । यह परमोदात्त जीवन दर्शन का महत्तम निदर्शन है । वेदों में हम जिस धर्म का सिद्धान्त रूप में दर्शन करते हैं, उसीका व्यावहारिक रूप हमें इस पवित्र ग्रन्थ में उपलब्ध होता है । तभी तो गीता की प्रशंसा करते हुए लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने स्पष्ट लिखा है — **''सारे संसार के साहित्य में गीता के समान कोई ग्रन्थ नहीं है। गीता हमारे ग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है । दु:खी आत्मा को शांति पहुँचाने वाला आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला और संक्षेप में चराचर जगत् के गूढ़ तत्वों को समझा देने वाला गीता के समान कोई भी ग्रन्थ संपूर्ण विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है ।''** वस्तुतः इसमें गंभीर दार्शनिक दृष्टि एवं जीवन की प्राणवती चेतना और आत्मीयता पूर्ण भास्वर भावों तथा विचारों को व्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य है । इसमें वितण्डावाद की कुहेलिका नहीं मिलती, बल्कि सर्वत्र एकात्म मानववाद की स्वच्छ वाग्धारा प्रवाहित है ।

व्यापक अर्थ में संस्कृति शब्द के जितने पक्ष होते हैं, गीता में सूक्ष्मता और गहराई से अंकन किया गया है । इसकी गरिमा को अपने विकार रहित हृदय से स्वीकारते हुए पाश्चात्य विचारक श्री जे०एम० फर्क्यूहर ने कहा है — **''जगत के संपूर्ण साहित्य में, चाहे सार्वजनिक लाभ की दृष्टि से देखा जाए और चाहे व्यावहारिक प्रभाव की दृष्टि से देखा जाए, भगवद्गीता के जोड़ का अन्य कोई भी काव्य नहीं है । दर्शनशास्त्र होते हुए भी यह सर्वदा पद्य की भांति नवीन और रसपूर्ण है । इसमें मुख्यत: तार्किक शैली होने पर भी यह एक भक्तिग्रन्थ है । यह भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के अत्यन्त घातक युद्ध का एक अभिनयपूर्ण दृश्यचित्र होने पर भी शांति तथा सूक्ष्मता से परिपूर्ण है और सांख्य-सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित होने पर भी यह उस सर्वस्वामी की अनन्य भक्ति का प्रचार करता है। अध्ययन के लिए इससे अधिक आकर्षक सामग्री कहाँ उपलब्ध हो सकती है ।''** इस दृष्टि से गीता भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन का प्राणाधार है और यह सच्चे अर्थों में एक कालजयी ग्रन्थ है ।

भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि:सृत गीता हमारे सनातन वैदिक धर्म का सर्वप्रामाणिक गौरवग्रन्थ है । इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए पाश्चात्य दार्शनिक महात्मा थारो ने लिखा है — **''प्राचीन युग की सभी स्मरणीय वस्तुओं में भगवद्गीता से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है । भगवद्गीता में इतना उत्तम सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखने वाले देवता को हुए अनेकों वर्ष हो जाने पर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभी तक नहीं लिखा गया । गीता के साथ तुलना करने पर जगत का आधुनिक समस्त ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है । विचार करने से इस ग्रन्थ का महत्व मुझे इतना**

(शेष पृष्ठ १२ पर)

।।ओ३म्।।

आर्य जगत् के समाचार

श्री मेवालाल आर्य वैदिक योग साधना आश्रम

पूर्वी (उ०प्र०) के आजमगढ़ जनपद के पुष्पनगर नामक ग्राम में स्व० श्री मेवालाल आर्य जी के यशस्वी सुपुत्र श्री सुरेशचन्द्र आर्य प्रधान आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी, कोलकाता-६ ने अपने पिताश्री की स्मृति में भव्य यज्ञशाला तथा अतिथिशाला का निर्माण करवाकर श्री मेवालाल आर्य वैदिक योग साधना आश्रम **न्यास** को अर्पित किया। दिनांक २१, २२, २३ फरवरी २०१६ को सामवेद पारायण यज्ञ के साथ इस यज्ञशाला एवं अतिथिशाला का लोकार्पण किया गया। त्रिदिवसीय यज्ञ एवं सत्संग में यज्ञ के ब्रह्मा डॉ० शिवदत्त आचार्य गुरुकुल आश्रम धनपतगंज, सुल्तानपुर रहे। वेद पाठी एरं ऋत्विक पं० देवनारायण तिवारी, पं० अभिषेक शास्त्री रहे। विद्वद्गण स्वामी शंकर मुनि, स्वामी आनन्दमुनि, स्वामी ऋतानन्द, आचार्य सचिन कुमार, आचार्य गिरिराज तथा सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पं० नेम प्रकाश त्रिपाठी के भजनोपदेश ने ग्रामीण जनता को भावविभोर किया। महोत्सव में आर्य समाज कलत्ता से मन्त्री दीपक आर्य, विवेक आर्य, रंजीत झा, मदन लाल सेठ, सुरेश कुमार अग्रवाल, सन्तोष सेठ, आदि सज्जन उपस्थित रहकर गरिमावृद्धि की। स्थानीय संयोजक श्री हरिदास विश्वकर्मा, श्री दिनेश सिंह आर्य आदि सज्जन रहे। कार्यक्रम अत्यन्त गरिमामय, सराहनीय प्रेरक तथा उत्साहजनक रहा। आयोजक श्री सुरेशचन्द्र आर्य ने सपरिजन खूब सेवा शुश्रूषा तथा धन्यवाद किया।

संरक्षक
सुरेशचन्द आर्य
(प्रधान)
आर्य समाज कलकत्ता

प्रस्तोता
रमेश विश्वकर्मा
आर्य समाज पुष्पनगर
आजमगढ़ (उ०प्र०)

सूचना

गारूलिया आर्य समाज द्वारा आयोजित निःशुल्क नेत्र परीक्षण व चिकित्सा शिविर मारवाड़ी रिलीफ सोसाईटी हॉस्पिटल के तत्वाधान में १४ फरवरी २०१६, रविवार को गारुलिया महादेव कल्ब में सम्पन्न किया गया एवं २८ फरवरी २०१६ रविवार प्राथमिक शारदा विद्यालय में दूसरा शिविर सम्पन्न हुआ।

नोट :- गारुलिया आर्य समाज का ४६वाँ वार्षिकोत्सव २ अप्रैल २०१६ शनिवार से ६ अप्रैल २०१६ रविवार तक आउट-फॉल ड्रेन रोड में कार्यक्रम करने का निश्चिय किया गया है।

अतः श्रीमान् से निवेदन है कि आप अपने आर्य संसार पत्रिका में उल्लेख करने का कृपया कष्ट करें।

– शम्भु कुमार आर्य, मंत्री

।।ओ३म्।।

वैदिक मिशन मुम्बई

३०९ मिल्टन अपार्टमेन्ट, जुहू कोलीवाडा, मुम्बई

अध्यक्ष — **सोमदेव शास्त्री** - ०९८६९६६८१३०, मन्त्री - **संदीप आर्य** - ०९९६९०३७८३७

वेद-वेदांग ज्योतिष सम्मेलन

दिनांक २६-२७ मार्च २०१६

आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के सौजन्य से, वैदिक मिशन मुम्बई के द्वारा आर्यसमाज सान्ताक्रुझ मुम्बई में वेद (वेदांग) ज्योतिष सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें विद्वानों द्वारा ग्रह-उपग्रह-नक्षत्र-लग्न-मुहूर्त-जन्म कुण्डली-शुभ-अशुभ गणित और फलित ज्योतिष आदि विविध विषयों पर गहन चिन्तन किया जायेगा।

सम्मेलन अध्यक्ष - **स्वामी प्रणवानन्द जी**, दिल्ली

—०—

आचार्य बलदेव जी का दु:खद निधन

गुरुकुल प्रणाली के महान् पोषक, संस्कृत व्याकरण के सूर्य, गौ भक्त, महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, आर्य समाज की महान् विभूति, त्यागी, तपस्वी, वीतराग सन्त गुरुकुल महाविद्यालय कालवा के आचार्य आदर्श साधक, यज्ञ भक्त, आचार्य बलदेव जी का ८५ वर्ष की आयु में २८ जनवरी २०१६ को प्रात:काल दु:खद निधन हो गया। वे प्रात:काल ४ बजे दयानन्द मठ रोहतक में अचानक गिर गये, वैसे आचार्य जी गत १-२ वर्ष से अस्वस्थ चल रहे थे फिर भी समय समय पर अध्यापन प्रचार आदि करते रहते थे। जब आचार्य जी अचानक गिर गये तो उन्हें तत्काल अस्पताल पहुँचाया गया, डाक्टरों के अथक प्रयास के पीछे भी आचार्य जी अपना पार्थिव शरीर छोड़ गये। उनके निधन से आर्य जगत में अपूर्ण क्षति हुई है। भगवान् दिवंगत आत्मा को अपने गोद में शरण दें। गुरुकुल परिवार की ओर से उन्हें श्रद्धाजंलि देते हुए उनके सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं।

– स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
संचालक
गुरुकुल आश्रम आमसेना

—०—

।। ओ३म् ।।

आर्य जगत् के समाचार

४०वाँ कोलकाता अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला में वैदिक साहित्य का प्रचार

— श्री [illegible]

कोलकाता शहर में आयोजित चालीसवें (४०वें) अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] (दिनांक २७-०१-२०१६ से ०७-०२-२०१६ तक) में कई वर्षों के अन्तराल के बाद दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा एवं आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल, डी.ए.वी. बुधा रोड आसनसोल के प्रयास से वैदिक साहित्य का स्टॉल (नं० ३५४) लगाया गया जिसमें वैदिक प्रचार हेतु मानव कल्याण के सूत्र (बांग्ला भाषा में) एवं अन्य साहित्य निःशुल्क वितरित किया गया । निःशुल्क सामग्री का प्रबन्ध आर्य समाज कलकत्ता, आर्य समाज बड़ाबाजार, आर्य समाज हावड़ा, आर्य समाज (महिला शाखा) भवानीपुर एवं आर्य समाज आसनसोल के द्वारा किया गया । पुस्तक मेले में श्री राजेन्द्र कुमार बरेली (यू॰पी॰) श्री प्रेमशंकर आर्य लखनऊ तथा कोलकाता के श्री सुरेश अग्रवाल, डॉ० अरविन्द सेठ, वैदिक विद्वान श्री वेदभानु जी एवं श्री वीरेश कुमार आर्य आदि मेले में निरन्तर वेद प्रचार में लगे रहे । स्टाल पर आने वाले पाठकों को वैदिक साहित्य एवं आर्य समाज से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी तथा उनकी शंकाओं का समाधान भी तार्किक ढंग से किया गया । बहुत से पाठक कालजयी ग्रन्थ ''**सत्यार्थ प्रकाश**'' को ढूँढते हुए भी आये । पुस्तक मेले में प्रतिदिन उत्सव का माहौल रहता था । स्टॉल पर आने वाले दर्शकों एवं पाठकों से वार्तालाप में ज्ञात हुआ कि कोलकाता शहर में आर्य समाज मन्दिरों में एवं आर्य समाजों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सम्मिलित न होने वाले व्यक्तियों में भी कई लेखक, वकील, अध्यापक एवं सामान्य व्यक्ति थे, जो कि आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित हैं । महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा दिखाए गये मार्ग एवं सिद्धान्तों के प्रचार को मानवीय हितों एवं अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक समझते हैं । पुस्तक मेले के माध्यम से वैदिक साहित्य का प्रचार कर ऋषि ऋण से उऋण होने का एक अत्यन्त सरल एवं उत्तम उपाय है ।

आर्य समाज कलकत्ता

–०–

डॉ० वागीश आचार्य जी द्वारा प्रचार कार्य

आर्य जगत् के उद्भट विद्वान् सुयोग्य वक्ता आचार्य डॉ० वागीश जी द्वारा आर्य समाज कलकत्ता १९, विधान सरणी, कोलकाता-६ के सभागार में १, २ और ३ अप्रैल को सायं ७ बजे से ८.३० बेज तक प्रवचन आयोजित है ।

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३